भारतीय संविधान : आदिवासी अधिकार

नन्हकू प्रसाद यादव,

शोधार्थी– हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

अग्रेजों नें भारत पर लगभग 200 वर्षों तक शासन किया। शासन व्यवस्था का वर्चश्व हाथ में होने से अंग्रेजों नें आदिवासियों का विभिन्न तरीकों से उत्पीड़न किया। अंग्रेंज शासकों ने आदिवासियों की सामूहिक सामाजिक व्यवस्था को भी तोड़ने का प्रयास किया। ईसाई धर्म के होने के कारण अंग्रेजों ने आदिवासी संस्कृति को छिन्न – भिन्न करने का प्रयास किया, जिससे आदिवासियों और अग्रेजों के मध्य कई संघर्ष भी हुए। इसके बाद भी सामूहिक चेतना से सम्पन्न आदिवासियों ने अंग्रेजों के अस्तित्व को कभी भी स्वीकार नहीं किया। आदिवासियों का दमन करने के लिए अंग्रजो नें कई अमानवीय कानून भी बनाये। इसके बाद भी आदिवासी समूहों ने अपनी संस्कृति को बचाये रखा।

15 अगस्त 1947 को अंग्रेजों नें भारत को आजाद किया। देश की शासन व्यवस्था को चलाने के लिए संविधान का गठन किया गया, जिसे 26 जनवरी 1950 ई0 से पूरे देश में लागू किया गया। संविधान निर्माताओं ने देश के वंचित, शोषित लोगों के विकास एवं सभ्य समाज से जोड़ने के लिए संविधान में कई प्रावधान किये, जिससे इन शोषित, पीड़ित लोगों के जीवन में बदलाव आ सके एवं देश के विकास में इनकी भूमिका सुनिश्चित हो सके। इस सम्बंध में संविधान सभा द्वारा अनुसूचित जनजाति की संवैधानिक शब्दावली को स्पष्ट करना समीचीन होगा कि "अनुसूचित जनजाति एक संवैधानिक शब्दावली है, जिसका प्रयोग भारतीय संविधान में हुआ है। वस्तुतः जनजाति एक मानवशास्त्रीय अवधारणा है जब कि अनुसूचित जनजाति एक प्रशासनिक एवं संवैधानिक अवधारणा है। भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 212 बताई गई है। जनसंख्या की सघनता की दृष्टि से भारत के विभिन्न प्रान्तों में इनमें असमानता पाई जाती है।"[1]

भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में आदिवासी शब्द को मान्यता नहीं दी गयी। संविधान इन जनजातियों को अनुसूचित जनजाति वर्ग के रूप में मान्यता देता है। भारतीय संविधान में वंचित, शोषित वर्ग के लिए बहुत से प्रावधान किये गये हैं जिससे आदिवासी वर्ग मुख्य धारा के लोगों के साथ चल सके। भारतीय संविधान अनुसूचित जनजातियों के लिए विकास एवं सुरक्षा जैसे अहम् प्रावधानों का प्रावधान करता है। भारतीय संविधान निर्माता डॉ भीम राव अंम्बेडकर नें समाज के वंचित, शोषित आदिवासियों की सुरक्षा को अहम् मानते हुए सुरक्षा के लिए निम्न प्रावधान किये जिन्हें अनुच्छेद 15 (4) (164), 19 (5), 23, 29, 164, 340, 332, 334, 335, 338, 339(1), 371 (क), 371 (ख), 371 (ग) पॉचवीं सूची एवं छठी सूची में समाहित हैं। जिनमें इन्हें शोषित पीड़ित करने वालों के लिए जुर्माने एवं दण्ड का विधान किया गया है।

दूसरी ओर इनके विकास को लेकर संविधान में संम्बन्धित प्रावधान अनुच्छेद 275 (1) प्रथम उपबंध तथा 339 (2) में समाहित किये गये, जिससे विकास के मामले में आदिवासी समाज भी मुख्य धारा के साथ–साथ चल सकें। भारतीय

संविधान में अनुसूचित जनजातियों की पहचान के कुछ मानक निर्धारित किये गये, जिन्हें स्पष्ट करना प्रासंगिक होगा। "भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366(25) के अनुसार अनुसूचित जनजातियाँ वे हैं जिन्हें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 में सूचीबद्ध किया गया। अनुच्छेद 342 के अनुसार भारतीय राष्ट्रपति किसी राज्य या केन्द्र शासित क्षेत्र में वहाँ के राज्यपाल से परामर्श कर सार्वजनिक अधिसूचना जारी कर जनजातियों या जनजातीय समूहों के किसी हिस्से या समूह को ऐसे निर्धारित कर सकता है कि उसे इस संविधान के उद्धेश्य के लिए उस राज्य या केन्द्र शासित क्षेत्र के सन्दर्भ में अनुसूचित जनजाति माना जाय।"[2]

संविधान लागू होने के बाद आदिवासी प्रावधानों के अनुसार इनकी पहचान प्रारम्भ की गयी । आजादी के बाद जनजातीय समूहों की पहचान कर 212 जनजातीय समूहों को सूचीबद्ध किया गया। इसके बाद इनकी पहचान में निम्न मापदण्ड़ों वाले समूहों को भी शामिल करते हुए 1991 की जनगणना के आधार पर 573 जनजातीय समूह निश्चित किये जा सके हैं। इन समूहों को संवैधानिक प्रावधानों में निहित करने के लिए कुछ व्यवहारिक आधारों की चर्चा करना आवश्यक होगा जो इन समहों के जीवन दर्शन में समाहित होते हैं। अनुसूचित जनजाति की एक विशिष्ट संस्कृति जिसके तहत उनके रहन – सहन एवं जीवन यापन का पूर्ण समावेश जैसे – भाषा, धार्मिक विश्वास, कला दस्तकारी, प्रथाएँ व परम्पराएँ आते हैं। आदिवासी समूहों के विकास की धारा में पिछड़ने का कारण आर्थिक आत्मनिर्भरता का आदिम तरीका एवं शैक्षणिक व तकनीकी आर्थिक विकास में कमी होना है। इनके पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण इनके जीवन यापन की सरल एवं सीधी – सादी जीवन शैली है। संविधान में अनुच्छेद 15 (4) में सुरक्षा के प्रावधान के विषय में हरिचन्द्र शाक्य लिखते हैं कि "अनुच्छेद 15 में धर्म, वंश, जाति, लिगं, जन्मस्थान के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव का निषेध किया गया है, परन्तु अनसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की सुरक्षा हेतु इस अनुच्छेद का खण्ड (4) अपवाद प्रदान करता है।"[3]

उपर्युक्त अनुच्छेद का प्रावधान अनुच्छेद 46 की नीति के अनुसार है, जिसमें राज्य सरकार को अधिकार दिया गया है कि वह विशेष ध्यान देकर पिछड़े लोगों की शिक्षा एवं आर्थिक विकास के हितों को ध्यान में रखते हुए सामाजिक अन्याय से इन वर्गो की रक्षा की जा सके। इस प्रावधान से उपर्युक्त अनुच्छेद को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। इसी अनुच्छेद के तहत पिछड़े वर्गो को शैक्षिक संस्थाओं में आरक्षण दिया जाता है। इन वर्गों को अन्य सरकारी सुविधाओं में भी रियायत दी जाती है। अनुच्छेद 16 (4) जो कि सुरक्षा से सम्बन्धित है इसके विषय में हरिश्चन्द्र शाक्य लिखते हैं कि "अनुच्छेद 16 के खण्ड 1 व 2 में उल्लिखित सरकारी रोजगार के मामलों में अवसर की समानता के अधिकार के प्रति अनुच्छेद 16(4) एक अन्य अपवाद है।"[4]

अनुच्छेद 16(4) केवल उन पिछड़े लोगों को आरक्षण देनें का प्रावधान करता है जिनका सरकार के मत से सरकारी सेवाओं में उनकी आबादी के अनुसार पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है। अनुच्छेद 16(4) राज्य के अधीन सरकारी नौकरियों में विशेष रूप से सुरक्षात्मक विभेंद का प्रावधान करता है।

आदिवासी समूहों की संपत्ति के हितों से सम्बन्धित अनुच्छेद 19 (5) के विषय में प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी लिखतें हैं कि "भारत की सम्पूर्ण सीमा के भीतर स्वतन्त्र रूप से विचरण एवं आवास तथा सम्पत्ति के अर्जन व निपटान करने के अधिकार की गारंटी प्रत्येक नागरिक को है, परन्तु अनुच्छेद 19(5) के तहत अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के हितों की सुरक्षा हेतु सरकार विशेष प्रावधान व प्रतिबंध लागू कर सकती है।"[5]

उपर्युक्त अनुच्छेद का प्रावधान इसलिए किया गया है कि अनुसूचित जनजातियों के लोग शैक्षिक, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े होते हैं। अशिक्षित होने से चालाक एवं कपटी लोग उन्हें धोखा देकर उनकी सम्पत्ति हड़प सकते हैं। हालांकि कुछ विशेष परिस्थितियों में उन्हें अपनी सम्पत्ति को बेचनें का अधिकार भी दिया गया है। इसके साथ ही इस प्रावधान में सरकार अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में आम नागरिकों को स्वतंत्र रूप से घूमनें व सम्पत्ति अर्जित करनें के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए भी कानून बना सकती है।

अनुच्छेद 23 जो कि आदिवासी लोगों को बन्धुआ मजदूरी एवं शारीरिक सौदेबाजी से सम्बन्धित है, जिसके विषम मे प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी लिखते हैं कि "अनुच्छेद 23 मानव शरीर की सौदेबाजी, बेगार प्रथा, बंधक मजदूर, तथा अन्य प्रकार के जबरन श्रम का निषेध करता है। जहाँ तक अनुसूचित जनजातियों का प्रश्न है यह प्रावधान बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इनमें से अधिकांश लोग बन्धक मजदूर की तरह ही कार्य करते है। "[6]

आदिवासी सीधे – सादे एवं अशिक्षित होने के कारण पूँजीपतियों एवं ठेकेदारों के कर्ज में डूबे रहते हैं, जिसके तहत उन्हें बन्धुआ मजदूर के रूप में काम करना पड़ता है। कर्ज के कारण पूँजीपति इनकी महिलाओं का भी शारीरिक उत्पीड़न करते हैं। बच्चों को भी ये पूँजीपति अपने रौब के कारण बेगार कराते हैं, जिससे बच्चे शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते। इस अनुच्छेद के प्रावधान से इस तरह के जबरन बन्धक मजदूर एवं शारीरिक उत्पीड़न को रोकनें का प्रयास किया गया है। आदिवासी समुदाओं को अपनी भाषा एवं समृद्ध संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय संविधान में अनुच्छेद 29 का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही साथ आदिवासी बहुल राज्यों में उनके कल्याण के लिए एक प्रभारी मंत्री की नियुक्ति का प्रावधान भी अनुच्छेद 164 में किया गया है। मध्य प्रदेश, बिहार एवं उड़ीसा जैसे आदिवासी बहुल राज्यों में इस अनुच्छेद से विशेष लाभ पहुँचा है। अनुच्छेद 330 के अनुसार लोकसभा एवं राज्यों की विधान सभाओं में इन वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिए सीटों का आरक्षण दिया गया है।

आदिवासी समुदायों को सुरक्षा प्रदान करने वाले सभी मामलों की जाँच करने के लिए भारतीय संविधान में अनुच्छेद 338 का प्रावधान है जिसके तहत ऐसे मामलों की जाँच के लिए राष्ट्रपति एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करेगा। यह अधिकारी इन समुदायों की सुरक्षा सम्बन्धित सभी मामलों की जानकारी राष्ट्रपति को देगा, जिसे राष्ट्रपति द्वारा संसद के प्रत्येक सदन के पटल पर रखेगा। इन प्रावधानों से सिद्ध होता है कि संविधान निर्माता आदिवासियों के हितों की सुरक्षा के लिए कृतसंकल्प थे।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 339(1) के अनुसार राष्ट्रपति संविधान के आरम्भ होने के 10 वर्ष बाद या किसी भी समय राज्यों में आदिवासी लोगों के कल्याण के लिए एवं उनकी प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार के लिए एक आयोग के गठन का आदेश दे सकता हैं। इस आयोग के गठन का उद्देश्य आदिवासी क्षेत्रों का प्रशासन एवं कल्याण था। जिसके लिए सरकारों ने इस की उपेक्षा ही की। केवल एक बार ही अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन 28 अप्रैल सन् 1960 को नियुक्त किया गया। इस आयोग ने आदिवासी लोगों के प्रशासन व कल्याणकारी विकास के सन्दर्भ में 1961 में अपनी रिपोर्ट पेश की। इसके बाद से इस तरह के आयोग का गठन नहीं किया गया।

अनुसूचित जनजाति विकास संबन्धी प्रावधान के विषय में भारतीय संविधान उल्लेख करता है कि –"अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास सम्बंधी प्रावधान मुख्यतः अनुच्छेद 275(1)

तथा 339(2) में निहित है।"[7]

यह अनुच्छेद अनुसूचित जनजाति बहुल राज्यों को विकास योजनाओं के लिए अनुदान की व्यवस्था से सम्बन्धित है। इन राज्यों के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता दिये जाने का प्रावधान किया गया है। यह अनुदान अनुसूचित जनजाति के लोगों की सुरक्षा एवं विकास के लिए निर्धारित होता है। इस धनराशि से आदिवासी क्षेत्रों की विकास योजनाओं को आदिम समूहों के अनुरूप बनाकर उनका विकास करने का प्रावधान हैं आदिवासी लोगों की सुरक्षा भी बहुत महत्वपूर्ण है, जिसके लिए सम्बन्धित अनुच्छेद से उनकी सुरक्षा करने का प्रावधान है।

किसी भी समूह के विकास के लिए उस समूह का सभी संस्थाओं में उचित प्रतिनिधित्व भी आवश्यक है। प्रशासनिक, प्रतिनिधित्व सभी समूहों का हो जिसके लिए भारतीय संविधान उच्च प्रशासनिक सेंवाओं में आदिवासी समुदायों के लिए आरक्षण का प्रावधान करता है। यह आरक्षण भारतीय सामाजिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में बहुत ही मायनें रखता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था ने सदियों से हाशिए के समाज के लोगों को न्याय एवं सत्ता से वंचित रखा। जिससे वे शैक्षिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ गये। संविधान में इन वर्गो के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक हितों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया। इस आरक्षण के लिए वर्जित तथा आशिंक रूप से वर्जित क्षेत्रों की उपसमिति ने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट में कहा था– "जनजातीय समुदाय आवश्यक आत्मविश्वास एवं प्रतिष्ठा केवल सरकारी तथा स्थानीय निकायों की नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व पाकर ही प्राप्त कर सकते हैं। यह उन्हे प्रशासन में सहभागिता का आभास देगा।"[8]

उपसमिति के विचारों को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 16(4) तथा 335 के अनुसार अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान है। अनुच्छेद 16(4) के अनुसार सरकार को ऐसे पिछड़े लोगों को आरक्षण देने का अधिकार है जिनका सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व नहीं है। यह प्रावधान जनतन्त्र की मूलभावना को रेखांकित करता है। इन लोगों को शुल्क, आयु एवं यात्रा भत्ता देकर इनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाता है।

भारतीय संविधान अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए भी विशेष प्रावधान करता हैं। संविधान में इसके लिए निम्न अनुच्छेदों का उल्लेख है। "संविधान के खण्ड एक्स2 के तहत अनुच्छेद 244 तथा 244(क) में अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का प्रावधान है। संविधान के अन्तर्गत 'अनुसूचित क्षेत्रों' तथा 'जनजातीय क्षेत्रों' शब्दों के निश्चित अर्थ है। 'अनुसूचित क्षेत्र' संविधान की पाँचवी अनुसूची में निहित प्रावधानों के द्वारा नियंत्रित है जब कि जनजातीय क्षेत्र छठी अनुसूची के प्रावधानों के द्वारा नियंत्रित है।"[9]

उपर्युक्त अनुच्छेद के द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में विकास एवं स्वायत्त्ता के लिए उचित प्रावधान किये गये हैं। संसद इन क्षेत्रों के लिए कानून बनाने में मनमानी नहीं कर सकती, जब तक सम्बन्धित राज्य का राज्यपाल इसकी संस्तुति न करे। राज्यपाल को इन राज्यों में कुशल प्रशासन के लिए कुछ विनियमों का अधिकार है। अनुसूचित जनजातियों के द्वारा इनके सदस्यों में भूमि के हस्तांतरण एवं रोक का अधिकार। राज्यपाल अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को उनके क्षेत्र की जमीन आवंटित व नियंत्रित कर सकता है।

राज्यपाल आदिवासियों के बीच ऐसे साहूकारों को नियंत्रित कर सकता है, जो इनके बीच अधिक प्रतिशत पर ऋण देते हैं। निष्कर्षः यह अनुच्छेद आदिवासियों की भूमि संरक्षण एवं उन्हें साहूकारों से बचानें से विशेष सम्बन्धित है।

आदिवासियों के अधिकारों के विषय में सयुक्त राष्ट्र संघ ने भी विशेष पहल की है। सयुक्त राष्ट्र ने आदिवासी समुदायों को भी परिभाषित करते हुए कहा कि आदिवासी समूहों से तात्पर्य उन लोगों से है जो उस देश के लोगों से भिन्न संस्कृति एवं वर्चस्व वादी व्यवस्था से पीड़ित होकर निर्जन भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करते हो । वह वर्चस्व गैरवादियों के आने से पहले ही निवास कर रहें हो। भारतीय प्रशासन इस परिभाषा का खण्डन करता हैं। सयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावित अधिकारों के बारे में डॉ0 वी0 पाकेम का कहना है कि "अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार आदिवासी लोगों को आत्म निर्णय का अधिकार प्राप्त है, जिसके आधार पर वे अपनी राजनैतिक हैसियत तथा संस्थाओं को तय कर सकते हैं और साथ ही वे अपने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास हेतु स्वतंन्त्रता पूर्वक प्रयास भी कर सकते हैं। स्वयत्तता तथा स्वशासन उनके इस अधिकार का अनिवार्य अंग है।"[10]

उपर्युक्त अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में ही पूर्वोत्तर भारत के लोगों को अपनी भाषा, संस्कृति, वनसम्पदा, रीति–कानून के स्वप्रबन्धन का अधिकार है। खनिज सम्पदा की दृष्टि से विकसित राज्य भी बीमारू राज्य का दर्जा क्यों पाये है, इसका कारण यही है, कि इन क्षेत्रों के लोगों को आत्मनिर्णय एवं आत्मप्रबन्धन का अधिकार नहीं दिया गया। खनिजों की लूट तो इन क्षेत्रों से की जाती है। लेकिन विकास कहीं और किया जाता है।

आत्मनिर्णय एवं स्वप्रशासन के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इन्हे विघटनकारी एवं कुछ विकासशील मानते हैं। इन दोनों ही आधिकारों से इन आदिवासी क्षेत्रों में तीव्र विकास होगा। यह क्षेत्र वन्सम्पदा एवं खनिज पदार्थो से सम्पन्न है। आत्मनिर्णय के अधिकार से वन्सम्पदा एवं खनिजों का प्रबन्धन इनके हाथ में होगा जिससे बड़ी मात्रा में मिले धन से इनके क्षेत्रों की उन्नति होगी। कुछ विद्वान इस अधिकार को अलग होने से मानतें हैं। उनका मानना है कि आत्मनिर्णय के अधिकार से आदिवासी क्षेत्रों में अलग राज्य बनाने के आंदोलन जोर होगें जिससे देश का नुकसान होगा। आत्मनिर्णय शब्द से लोग अलग होने का अर्थ लेते है। लेकिन आत्म निर्णय एवं स्वप्रबन्धन विषम भौगोलिक स्थितियों के लिए अनिवार्य हैं, क्योंकि समान विकास योजनाएं इन क्षेत्रों का विकास नहीं कर सकती । भिन्न–भिन्न संस्कृति एवं विषम भौगोलिक स्थितियों के अनुसार योजनाओं के प्रबन्धन से ही इन क्षेत्रों की उन्नति सम्भव होगी। आत्मनिर्णय के विषय में डॉ0 वी0 पाकेस का कहना है कि "आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का अर्थ हमेशा अलग होने के अधिकार से नहीं होता । इसका सीधा सा मतलब है – लोगों को यह तय करने का अधिकार है कि उनके हित के लिए सर्वोत्तम रास्ता क्या है।"[11]

आदिवासियों के मानवीय स्वरूप को पुनः वापस लाने के लिए सरकार नें संविधान में विशेष प्रावधान किये। उनकी सुरक्षा के लिए आदिवासी बहुल क्षेत्रों में जनजातीय कल्याण थानें व न्यायालयों की स्थापना की गयी । उनकी समृद्ध सांस्कृतिक रीति–रिवाजों, मूल्यों एवं सामूहिक चेतना के संरक्षण के लिए आदिवासी क्षेत्रों में संग्रहालय व कार्यालय बनाये गये है, जिसमे संचित विरासत को भविष्य में इनकी आगे आने वाली पीढ़ी तक पीढ़ी तक पहुँचाया जा सके। नीति निर्देशक तत्वों का संविधान में उल्लेख है जो संविधान में किसी भी व्यक्ति को लिंग, जाति, धर्म, सम्प्रदाय के आधार पर भेदभाव का विरोध करते हैं। विकास में समानता लाने के लिए पिछड़े लोगों के विकास के लिए विशेष प्रावधान किये गये। इतना ही नहीं आदिम समूहों की विकास योजनाओं में इनकी भौगोलिक स्थिति को भी ध्यान में रखा गया। आदिम समूहों का रहन–सहन आम नागरिकों से अलग है। जब उनके पूरे परिवेश में अन्तर है तो विकास की

एक जैसी नीतियाँ बनाने से उनका विकास नहीं होगा।

निष्कर्ष

आज आवश्यकता इस बात की है उनके लिए कल्याणकारी योजनाओं के निर्माण में उन समूहों के लोगों का उचित प्रतिनिधित्व हो। शिक्षा में भी उनके लोगों को शामिल किया जाय। जिससे आदिम समूह मुख्यधारा में शामिल हो सके।

1 अनिल मीणा, आदिवासी भारत मानव शास्त्र, विनायक प्रतियोगिता टाइम्स इंदौर, पृ0— 1

2 वहीं, पृ0, 04

3 हरिशचन्द्र शाक्य, आदिवासी और उनका इतिहास, प्रथम संस्करणः 2011, पृ0— 103

4 वहीं पृ0— 105

5 प्रो0 मधुसूदन, भारत के आदिवासी संस्करण 2003, पृ0— 134

6 वहीं, पृ0— 134—135

7 वहीं, पृ0— 137

8 वहीं, पृ0— 138

9 वहीं पृ0— 143

10 रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन?, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली,संस्करण 2016, पृ0— 84

11 वहीं, पृ0— 85

Copyright © 2017, Nanhku Prasad Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.